

## विस्थापन की पीड़ा

पी.सी. जोशी

मैं जब अपने 55 वर्ष पूर्व कलकत्ता प्रवेश के प्रारम्भिक अनुभवों पर संस्मरण आधारित यह लेख तैयार कर रहा था, तब मेरे पास अपने स्मृति भंडार के अलावा कोई अन्य स्रोत या ठोस आधार नहीं था जो इस लेखन में मेरा सहायक बन सके। मेरे मन में प्रश्न उठा कि केवल अपनी स्मृति पर आधारित विवरण किस हद तक विश्वसनीय हो सकता है। क्या मैं इस प्रकार के प्रयास द्वारा तथ्यों के साथ खिलवाड़ तो नहीं कर रहा हूँ। लेकिन जब मुझे कई बड़े लेखकों के संस्मरणों का ध्यान आया तो मैं अपना प्रयास जारी रखने का प्रयास कर सका। स्मृति आधारित विवरणों की सीमाओं के साथ साथ सम्भावनाओं को रेखांकित करने वाले दो महत्वपूर्ण कथन मैं नीचे उद्धृत कर रहा हूँ। पहला रूसी कवयित्री अन्ना अखमातोवा और दूसरा इंग्लिशतान स्थित दर्शनशास्त्रवेत्ता और विचारक इजाइया बर्लिन की रचनाओं से है :

*“सुसंगत संस्मरणों को प्रस्तुत करने के हर प्रयास में किसी हद तक मिथ्यावाचन होना लाजिमी है। कोई भी मानवीय स्मरणशक्ति इतनी व्यवस्थित नहीं हो सकती कि वह अविच्छिन्नक्रम में सब कुछ स्मृति में ला सके। चिट्ठियाँ और डायरी भी अक्सर अनुपयुक्त सहायक साबित होती हैं।”* अन्ना अखमातोवा, डायरी के पन्ने (1973)

इजाइया बर्लिन का कथन भी अत्यंत महत्वपूर्ण है : *“मैंने कभी डायरी नहीं रखी। और इस विवरण का आधार है वह सब कुछ जो मैं इस समय स्मरण कर सका हूँ या जो मुझे लगता है मुझे स्मरण है और जिसे बातचीत में पिछले तीस या अधिक वर्षों में मैंने अपने दोस्तों को बताया है। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि मनुष्य की स्मृति कम से कम मेरी स्मृति, उन तथ्यों और घटनाओं और मेरे लेख में उद्धृत वार्तालापों की पूरी तरह विश्वसनीय साक्षी नहीं है। मैं यही कह सकता हूँ कि मैंने तथ्यों को ठीक ठीक वैसे ही अंकित किया है जैसे मुझे याद आये हैं।”* इजाइया बर्लिन, मीटिंग्स विद रशन राइटर्स (1980)

संक्षेप में, मैंने लम्बे अरसे तक सोच विचार के बाद यह लेख तथा अन्य स्मृति आधारित लेख इसी विश्वास के साथ लिखे हैं कि मानवीय स्मृति जो कुछ चुन चुन कर संग्रहण और संचयन करती जाती

है वह खट्टे मीठे मानवीय अनुभवों का एक बहुमूल्य खजाना है जिसका कोई विकल्प (या अनुकल्प) नहीं है। मेरी राय में समय की प्रक्रिया एक छलनी का काम करती है जो याद रखने लायक मूल्यवान, महत्वपूर्ण तथ्यों और अनुभवों को भूलने योग्य महत्वहीन तथ्यों से अलग कर उन्हें संजोये रखने का काम करती रहती है। साथ ही एक व्यक्ति के स्मृति आधारित विवरण की अपूर्णताओं और दोषों के, अन्य व्यक्तियों के विवरणों से, संशोधन की सम्भावना भी बनी रहती है।

कामरेड ज्योति बसु से मेरा प्रथम परिचय आज से करीब आधी शताब्दि पूर्व शायद सन् 1955 में बड़ा नगर, कलकत्ता में हुआ था। चालीस वर्ष से अधिक के कामरेड बसु को तब सक्रिय राजनैतिक जीवन में प्रवेश किये एक दशक से अधिक हो चुका था और वे उभरते हुए प्रभावशाली नये नेताओं में अग्रणी थे और कलकत्ते में ही नहीं जहां से बंगाल असेम्बली के लिए वे चुनाव जीत चुके थे बल्कि समस्त बंगाल में भी एक मास लीडर के रूप में अपनी मान्यता और प्रतिष्ठा स्थापित कर चुके थे।

सन् 1955 में जब मेरा कार्यक्षेत्र लखनऊ के बदले कलकत्ता हो गया तो मेरे नामराशि अग्रज, समानधर्मा और सीनियर कामरेड पी. सी. जोशी ने कलकत्ते के अपने कुछ प्रिय साथियों के नाम मुझे परिचयपत्र दिये थे जिनमें सबसे पहले पार्टी संस्थापकों में गिने जाने वाले और 'मेरठ षडयंत्र केस' में उनके साथी रहे कामरेड मुजफ्फर अहमद के नाम पत्र था जो 'काका बाबू' नाम से मशहूर थे। मुलाकात होने पर 'काका बाबू' का पहला ही प्रश्न था कि मैं उत्तर प्रदेश छोड़ कर क्यों इतनी दूर आया हूं जबकि हिन्दी प्रदेश में सभी क्षेत्रों और वर्गों में समाजवादी चेतना और कार्यक्रम फैलाने के लिए पढ़े लिखे और योग्य युवक कामरेडों की बड़ी जरूरत है। उन्होंने यह भी जानना चाहा कि कामरेड जोशी ने मुझे उत्तर प्रदेश न छोड़ने की सलाह क्यों नहीं दी?

मैंने विस्तार से उन्हें अपने कलकत्ते आने के कारण समझाये और कामरेड जोशी की मेरे निर्णय से असहमति से भी अवगत कराया। यह सब कुछ सुन कर काका बाबू हंसे और बोले : "कलकत्ते में, बंगाल में, तुम्हारा स्वागत है, यद्यपि अच्छा होता तुम उत्तर प्रदेश को ही अपना कार्यक्षेत्र चुनते। यहां अपने प्रोफेशनल कार्य से जो भी समय बचेगा उसमें तुम किस क्षेत्र में और क्या काम कर सकते हो, यह सोच समझ कर तय करना होगा, तुम्हें भी, हमें भी। तुम्हारा रिसर्च इंस्टीट्यूट बड़ानगर में है, और ज्योति बसु वहां से हमारे एम.एल.ए. हैं तो अच्छा हो तुम ज्योति से फुर्सत से मिल लो। ज्योति जब भी बड़ानगर जाते हैं, उस इंस्टीट्यूट में अवश्य जाते हैं, वहीं तुम्हारी उनसे मुलाकात हो जायेगी। मैं भी ज्योति से तुम्हारा जिक्र करूंगा।

मुझे लगा पूरी औपचारिक भद्रता के बावजूद काका बाबू के रुख में कुछ तटस्थता सी थी। कामरेड जोशी के खत के बावजूद उनका व्यवहार रूखा नहीं तो अधिक सहानुभूतिपूर्ण भी नहीं लगा। मेरे संवेदी मन को ठेस सी लगी। मैंने सोचा उन्हें शायद मेरा उत्तर प्रदेश छोड़ना अच्छा नहीं लगा। उन्होंने मेरे साथ गयीं कल्पना जी से अवश्य बंगाली में पूछा कि जोशी से मेरा रिश्ता क्या है। कल्पना जी ने कहा कि सब मुझे 'छोटा जोशी' पुकारते हैं और मुझे वे जोशी परिवार का अंग ही समझें। जब कल्पना जी से काका बाबू की बात चल रही थी तो एकदम मेरे दिमाग में एक बड़ी पुरानी स्मृति ताजा हो गयी। मेरी मां की चचेरी बड़ी बहन के पति, रेबाधर पंत, जो उस समय 'नैनीताल पावर हाउस' के मुख्य अधिकारी थे, मेरे लखनऊ छोड़ने के पूर्व सरकारी काम से लखनऊ आये थे और उन्होंने बताया कि कई वर्ष पूर्व जब वह अल्मोड़ा इंटर कालेज के विद्यार्थी थे तो काका बाबू 'मेरठ कान्सापिरेसी केस' के कैदी के रूप में अल्मोड़ा में निष्कासित थे। मेरे मौसा रेबाधर जी और उनके एक दो मित्रों की क्रांतिकारियों से सहानुभूति थी। उन लोगों ने काका बाबू से सम्पर्क किया और उनके अकेलेपन को दूर करने और अपने प्रांत से दूर अनजानी जगह में उनका सहायक बनने की भूमिका पूरे मन से निभायी। यह जानने पर कि मैं कलकत्ता जा रहा हूं उन्होंने इच्छा प्रकट की कि मैं काका बाबू से अवश्य मिलूं। शायद उन्हें युवा रेबाधर का अभी भी स्मरण हो आये और यदि उन्हें उनकी याद आये तो मैं उनका

प्रणाम काका बाबू तक पहुंचा दूँ।

काका बाबू कामरेड जोशी के दूर के रिश्ते में छोटे भाई के रूप में जो स्नेह मुझे न दे सके रेबाधर का जिक्र करते ही उनकी आंखें सजल हो उठीं और वे स्नेह से सराबोर हो गये। पुराने दिनों की याद ताजा होते ही वे बोले कि रेबाधर और उसके मित्रों के कारण अल्मोड़ा में उनका निष्कासन अभिशाप नहीं वरदान बन गया था। वे रेबाधर को कभी भूल नहीं पाये और वे समझेंगे कि रेबाधर ने तुम्हें भेजा है और रेबाधर ने जो उनके लिए किया उसी को याद करते हुए वे कोशिश करेंगे कि मेरा कलकत्ता निवास मेरे लिए सुखद हो और मेरे विकास में पूरी तरह सहायक हों। वे कल्पना जी से बोले कि 'छोटो जोशी' को विश्वास दिलाओ कि मेरे यहां भी उसका उतना ही स्वागत होगा जितना कल्पना के घर में हुआ था। मुझे याद पड़ता है कि कलकत्ता में कल्पना जी की छोटी बहन से मेरी शादी जो कोर्ट में रजिस्ट्रेशन द्वारा हुई थी उसमें काका बाबू पांच गवाहों में से एक प्रमुख गवाह के रूप में स्वयं उपस्थित हुए थे और उन्हीं के कहने पर मैरिज रजिस्ट्रार शादी के नोटिस की अवधि एक महीने से एक हफ्ता करने पर खुशी खुशी राजी हो गया था। उनके इसी असीम स्नेह से तब मैं अभिभूत हो गया था।

कामरेड ज्योति बसु से मेरी मुलाकात के पहले काका बाबू उन्हें मेरे बारे में बता चुके थे इसलिए उनसे मुलाकात और भी अधिक आसान, महत्वपूर्ण और फलदायक हो गयी। कामरेड ज्योति बसु से मिलना मेरे लिए क्यों महत्वपूर्ण और उस कालबिन्दु पर निर्णायक और प्रेरणादायी बना इसका एक संदर्भ है जिसका खुलासा करना जरूरी है। यह मुलाकात मेरे मानसिक क्षितिज को विस्तार प्रदान करने और मुझे एक दुहरी मानसिक ग्रंथि और द्वंद्व से मुक्त करने में क्यों सहायक बनी इसको समझने के लिए कम्युनिस्ट आंदोलन के अंदर बुद्धिजीवियों की भूमिका को लेकर जो परस्पर विरोधी रुख और रुझान थे उन पर प्रकाश डालना जरूरी है क्योंकि उनके कारण मैं काफी दिनों तक दुविधा, अंतर्द्वंद्व और संशय से पीड़ित रहा था। मेरा अगला कार्यक्षेत्र क्या होगा वह इन्हीं प्रश्नों से अभिन्न रूप से जुड़ा था। ये प्रश्न केवल सैद्धांतिक मतभेद के प्रश्न नहीं थे ये पार्टी की 'इनर पार्टी स्ट्रगल' तथा 'इनर पावर स्ट्रगल' से भी जुड़े गये थे जिनसे मेरी तरह पार्टी का कोई भी साधारण सदस्य अछूता नहीं रह सकता था। पार्टी के अंदर पी.सी. जोशी की वैचारिक दृष्टि और राजनैतिक रुझान को लेकर सन् 1948 में तीव्र मतभेद और अंदरूनी संघर्ष पैदा हो गया था जिसके आधार पर उन्हें पार्टी से बाहर कर दिया गया था। वह मतभेद और संघर्ष 1950 में उनको पार्टी में फिर से शामिल कर देने के फैसले के बाद भी बरकरार था— कभी खुले रूप से कभी प्रच्छन्न रूप से। हमेशा खुले रूप से नहीं तो अधिकतर प्रच्छन्न रूप से उस मतभेद से जुड़े द्वंद्व पार्टी को तीव्र रूप से विभाजित और गम्भीर रूप से उद्वेलित किये हुए थे। मुख्य मुद्दा था : भारत द्वारा प्राप्त की गयी (या भारत को ब्रिटेन द्वारा दी गयी) आजादी का मूल वर्गीय चरित्र क्या है? आजादी के फलस्वरूप स्थापित राष्ट्रीय सरकार का मूल वर्गीय चरित्र और राष्ट्रीय भूमिका क्या है और उसकी आजादी को एक मजबूत आर्थिक और सामाजिक आधार देने तथा शोषित मजदूरों, किसानों तथा उत्पीड़ित जातियों और समुदायों की मुक्ति की प्रक्रिया में राष्ट्रीय सरकार की भूमिका कितनी सकारात्मक है कितनी अवरोधक? आजादी को समाजवाद के लक्ष्य से जोड़ने के अभियान के लिए कम्युनिस्ट और सोशलिस्ट पार्टियों का रुख आजादी की तरफ और राष्ट्रीय सरकार की तरफ क्या होना चाहिए— सहयोग का या विरोध का? इन प्रश्नों का संतोषजनक समाधान न होने के कारण पार्टी के अंदर एक ध्रुवीकरण की स्थिति बनी हुई थी जिससे कालांतर में संयुक्त पार्टी की दो पार्टियों में विभाजन में विध्वंसक परिणति हुई। अखिल भारतीय समाजवादी आंदोलन के लिए ही नहीं राष्ट्रीय आंदोलन के सेक्यूलर सोशलिस्ट चरित्र के लिए भी इस प्रक्रिया के घातक परिणाम हुए... कम्युनिस्ट आंदोलन एक राष्ट्रव्यापी आंदोलन के बजाय केवल बंगाल, केरल आदि सीमावर्ती राज्यों में सिमट कर रह गया और भारत के हृदय प्रदेश से इस आंदोलन का सफाया ही हो गया।

इन्हीं मानसिक द्वंद्वों और संशयों के संदर्भ में मेरी पीढ़ी के अनेक युवाओं के लिए एक सम्पूर्ण रूप से समर्पित पेशेवर क्रांतिकारी और फील्ड एक्टीविस्ट के रूप में सक्रिय रहना मुश्किल होता चला

गया था। हमारी पीढ़ी के अनेक युवा इस मानसिक द्वंद और संकट के शिकार होकर वामपंथी राजनीति से नहीं वरन सक्रिय राजनीति से ही कट गये। एक दो जो अत्यंत संवेदनशील थे खुदकुशी ही कर बैठे। ऐसी स्थिति में मुझे आशा की किरण दिखायी दी जब इसी पृष्ठभूमि में सन् 1950 में उपलब्ध माओत्से तुंग के प्रसिद्ध लेख 'चीन की क्रांति के संदर्भ में ग्राम अध्ययन और निरीक्षण के महत्व' से प्रभावित होकर मैंने ग्राम अध्ययन के राजनैतिक महत्व को पहचाना। इस नयी समझ से प्रेरित होकर मैंने 'भूमि सम्बंध सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक विकास— ग्रामीण उत्तर प्रदेश का अध्ययन और विवेचन' विषय पर शोध प्रोजेक्ट बनाया। पूर्वी, पश्चिमी और मध्य यू.पी. के चुने हुए गावों में किसानों के बीच रह कर मैंने इस प्रोजेक्ट के अंतर्गत संख्यात्मक और गुणात्मक दोनों प्रकार के आंकड़े, जानकारियां बड़े परिश्रम और कठिनाई से जमा की थीं और करीब तीन साल के गहन, निरीक्षण और विवेचन द्वारा प्रोफेसर राधाकमल मुकर्जी के निर्देशन में एक शोधप्रबंध तैयार किया था। इस शोधप्रबंध के आधार पर मुझे सन् 1955 में लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा पीएच.डी. की उपाधि प्रदान की गयी थी।

शोध कार्य के दौरान व्यस्तता भरे मन को जिन संशयों और अंतर्द्वंदों से मुक्ति मिली थी शोध कार्य समाप्त होने पर वे फिर मुझे अशांत और उद्वेलित करने लगे। प्रश्न था : आगे अब मैं क्या करूं? राजनैतिक एक्टिविस्ट की भूमिका में वापस लौट जाऊं और कानपुर में कामरेड जोशी के साथ मजदूरों के बीच या उन्हीं के निर्देशन में अल्मोड़ा में पहाड़ी जनता और किसानों के बीच होलटाइमर बन कर क्रांतिकारी के रूप में नयी जिन्दगी शुरू करूं या पेशेवर रिसर्चर/टीचर के रूप में किसी विश्वविद्यालय/रिसर्च इंस्टीट्यूट में जड़ें जमा कर बौद्धिक कर्म द्वारा अपने रेडिकल विश्वासों और विचारों को अमल में लाने का प्रयास करूं। पार्टी के नेताओं, जिनमें कामरेड जोशी प्रमुख थे, की स्पष्ट राय थी कि पार्टी होलटाइमर की जिन्दगी छोड़ना और अकादमिक जिन्दगी को चुनना एक पेशेवर क्रांतिकारी के आदर्श के प्रतिकूल ही नहीं, एकदम पलायनवाद कहा जायगा। इसका मतलब है राजनैतिक कर्म को, देश की राजनैतिक जरूरत को प्राथमिकता न देकर स्वेच्छा को प्राथमिकता देना जो मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी के लिए स्वाभाविक हो सकता है लेकिन एक मार्क्सवादी क्रांतिकारी के लिए नहीं।

मैं चाहता था कि पीएच.डी. प्राप्त करने के बाद अपनी इस नयी उपाधि और योग्यता के आधार पर लखनऊ विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग में या अल्मोड़ा या नैनीताल के डिग्री कालेज में अर्थशास्त्र के अध्यापक के रूप में मेरी नियुक्ति हो जाये तो अध्यापन करते हुए भी मैं पार्ट टाइमर के रूप में पार्टी से जुड़ कर राजनैतिक रूप से सक्रिय रहने की कोशिश भी कर सकता हूं। लेकिन रणदिवे के नेतृत्व में नवनिर्मित राष्ट्रीय सरकार के आक्रामक विरोध और सम्पूर्ण रूप से असहयोग के बाद ऐसी स्थिति हो गयी थी कि किसी भी शिक्षा संस्थान में कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य की नियुक्ति पर सख्त पाबंदी लगा दी गयी थी। और मेरे प्रोफेसरों की लाख कोशिशों के बाद भी कहीं मेरी नियुक्ति न हो सकी। किसी जगह नियुक्ति हो भी गयी तो यह जानने पर कि मैं पार्टी सदस्य रह चुका हूं वह नियुक्ति एकदम रद्द कर दी गयी।

उत्तर प्रदेश में शिक्षा संस्थानों के बंद दरवाजे खोलने की एक शर्त बार बार मेरे सामने रखी गयी थी कि मैं लिख कर यह घोषित कर दूं कि मैं कम्युनिस्ट पार्टी से अपना सम्बंध विच्छेद करने के लिए तैयार हूं और किसी भी अध्यापन और रिसर्च संस्थान में नियुक्ति के बाद पार्टी से सम्बंधित किसी राजनैतिक गतिविधि में हिस्सा नहीं लूंगा। तत्कालीन कम्युनिस्ट राजनीति से गम्भीर रूप से मोहभंग के बाद भी मुझे यह कतई मंजूर नहीं था कि मैं कोई नौकरी हासिल करने के लिए अपने राजनैतिक विश्वासों और विचारों का परित्याग करूं। यदि मुझे नौकरी और कम्युनिस्ट के रूप में पहचान— दो में एक को चुनना है तो मेरा यही दृढ़ निश्चय और निर्णय था कि मैं कम्युनिस्ट आइडेंटिटी को ही चुनूं चाहे इसके नतीजे कुछ भी हों। यानी चाहे मुझे आखिर में एक होलटाइमर की जिन्दगी में ही वापस आना पड़े।

मैं इसी दुविधा और द्वंद के दौर से गुजर रहा था कि कामरेड जोशी के कानपुर के निवास में मेरी मुलाकात श्री हरकुमार चतुर्वेदी से हुई जो कलकत्ता में प्रोफेसर प्रशांत महालनोबिस द्वारा संस्थापित

इंडियन स्टैटिस्टिकल इंस्टीट्यूट में कई वर्षों से 'नेशनल साम्पल सर्वे' विभाग में सीनियर टेक्नीशियन के पद पर कार्य कर रहे थे। उन्होंने सूचित किया कि प्रोफेसर महालनोबिस ने दूसरी पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा तैयार करने के लिए एक 'प्लानिंग डिवीजन' बनाया है जिसमें भारत में प्लानिंग सम्बंधी शोध और अध्ययनों को प्रोत्साहित करने के लिए उन्हें ऐसे युवा विद्वानों की जरूरत है जो अपने अपने विषयों के विशेषज्ञ भी हों और साथ ही रेडिकल आर्थिक और सामाजिक विचारधारा में जिनका विश्वास और आस्था हो। चतुर्वेदी जी ने यह भी सूचना दी कि इस दृष्टि से उन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी के जनरल सेक्रेटरी के पास श्री निखिल चक्रवर्ती के मार्फत संदेश भेजा है कि वे ऐसे कुछ चुने हुए कम्युनिस्ट बुद्धिजीवियों के नाम उन्हें दें जो इस प्रकार की योग्यता और निष्ठा रखते हों और जिन्हें प्लानिंग डिवीजन में शामिल किया जा सके। चतुर्वेदी जी ने कहा कि वे कलकत्ता रवाना होने के पूर्व निखिल बाबू को मेरा नाम दे देंगे, साथ ही मुझे राय दी कि मैं तुरंत एक अर्जी अपने बायोडेटा के साथ प्रोफेसर महालनोबिस के पास भेज दूं। मैंने उनके आदेश का पालन किया और प्रोफेसर महालनोबिस को तुरंत अपनी अर्जी अपने बायोडेटा के साथ रवाना कर दी। अपने रेफरी व्यक्तियों में मैंने अपने गुरु प्रोफेसर राधाकमल मुकर्जी और प्रोफेसर धूर्जटि प्रसाद मुकर्जी का नाम दिया जिनसे प्रोफेसर महालनोबिस पूरी तरह परिचित ही नहीं थे, ये दोनों उच्चकोटि के बंगाली बुद्धिजीवी होने के कारण उनके मित्र भी थे। मेरे अर्जी भेजने के एक सप्ताह के भीतर ही मुझे प्रोफेसर महालनोबिस ने तार द्वारा सूचना दी कि मैं तार को सीनियर टेक्नीशियन के रूप में अपना नियुक्तिपत्र समझूं और अपनी सुविधा अनुसार कलकत्ता पहुंच कर कार्यभार संभाल लूं। मेरे पदभार ग्रहण कर लेने पर मेरी योग्यता के अनुकूल मेरा वेतन आदि निश्चित कर दिये जायेंगे जिसके बारे में मैं तनिक भी चिन्ता न करूं।

मेरी चिन्ता तो दूर हुई लेकिन मेरा मन संशयग्रस्त बना रहा विशेषकर अपने अग्रज और सीनियर कामरेड जोशी की इस नियुक्ति पर जरा भी खुशी जाहिर न करने के कारण मेरी यह दुविधा बनी रही कि मैं जो निर्णय ले रहा हूं वह उत्तर प्रदेश में अपनी सामाजिक और राजनीतिक जिम्मेदारी से पलायन तो नहीं है? कामरेड जोशी से जब मैंने प्रश्न किया कि उनकी असहमति का कारण क्या है तो उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि आजादी के बाद उत्तर प्रदेश की भारतीय राजनीति और विकास में निर्णायक भूमिका होने जा रही है और यहां के हर युवा कामरेड को इस नैतिक जिम्मेदारी को समझने और इस चुनौती को स्वीकार करने के लिए तैयार होना चाहिए। किसी भी युवा के लिए उत्तर प्रदेश प्रगतिशील राजनीति की एक महत् कर्मभूमि और नये आर्थिक सामाजिक दर्शन की महत् प्रयोगशाला बनने जा रही है। इस दृष्टि से उत्तर प्रदेश से किसी भी प्रतिभावान युवक का पलायन उत्तर प्रदेश की बड़ी हानि है। इसे हर प्रगतिशील युवा को समझना चाहिए। उत्तर प्रदेश के कांग्रेसी नेतृत्व का कम्युनिस्ट और सोशलिस्ट विरोध उत्तर प्रदेश को आधुनिक और प्रगतिशील विचारधारा की दृष्टि से बौद्धिक रूप से वीरान बना देगा और यही सिलसिला चलता रहा तो आने वाले जमाने में उत्तर प्रदेश रूढ़िवादी विचारधारा और प्रतिगामी राजनीति का खुला प्रभावक्षेत्र बन जायेगा। पिछले दशकों में उत्तर प्रदेश से बड़े पैमाने पर हुए प्रतिभापलायन के नतीजों पर यदि आज मैं विचार करता हूं तो लगता है कि कामरेड जोशी का पूर्वानुमान कितना सही और भविष्यसूचक (प्रोफेटिक) था। लगता है जैसे हम सब जो उत्तर प्रदेश से निकल आये उत्तर प्रदेश की निरंतर सामाजिक अवनति और राजनैतिक अवसान और अधोगति में भागीदार रहे।

मुझे याद आता है कि उत्तर प्रदेश से इस प्रतिभापलायन से स्वयं कामरेड जोशी भी बचे न रह सके और वे कुछ वर्षों बाद स्वयं उत्तर प्रदेश छोड़ कर दिल्ली निवासी हो गये और कुछ पीड़ादायी वर्ष पार्टी हेड क्वार्टर्स में बिता कर जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय में चले गये और अंतिम समय तक 'भारत में कम्युनिस्ट आंदोलन का इतिहास' के रिसर्च प्रोजेक्ट की रूपरेखा तैयार करने में जुट गये। उत्तर प्रदेश से प्रतिभापलायन शायद वहां की समग्र सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों और प्रक्रियाओं का लॉजिकल परिणाम था जिससे बड़े से बड़े व्यक्ति भी अछूते न रह सके। लेकिन यह भी याद करने लायक है और

इतिहास में दर्ज करने लायक है कि अपने अंतिम वर्षों में कामरेड जोशी ने जो अपनी आत्मकथा की रूपरेखा तैयार की थी उसमें उत्तर प्रदेश छोड़ कर पार्टी नेतृत्व के निर्देश पर दिल्ली निर्विरोध चले आने के अपने निर्णय को उन्होंने अपने समग्र राजनैतिक जीवन की दूसरी सबसे बड़ी भूल स्वीकार किया था जिसके परिणाम उनके लिए, उत्तर प्रदेश के लिए, पार्टी के लिए और भारतीय राजनीति के लिए घातक साबित हुए। अपने जीवन की पहली सबसे बड़ी भूल (हिमालयन ब्लंडर) उन्होंने इस बात को माना कि पार्टी की दूसरी कांग्रेस में जहां वे जनरल सेक्रेटरी के पद से हटाये गये और बाद में पार्टी से भी वहां उन्होंने रणदिवे के नये राजनैतिक रुख और उनकी नीति पर वैचारिक सैद्धांतिक और व्यावहारिक स्तर पर प्रश्नचिह्न लगाने और उसको गम्भीरता से जांचने परखने के लिए पार्टी कांग्रेस का आह्वान करने के बजाय रणदिवे के प्रचंड प्रहार के सामने बिना लड़ाई लड़े हार मान ली और अपनी अंतरात्मा की आवाज को दबा दिया जो उन्हें संकेत दे रही थी कि जो कुछ हो रहा है वह पार्टी और देश के लिए घातक हो सकता है। उनकी दूसरी हिमालयी भूल उनकी राय में थी— उत्तर प्रदेश को अपने शेष जीवन का कर्मक्षेत्र न चुन कर वहां से दिल्ली के लिए पलायन। उन्हें अहसास हुआ कि यदि वे उत्तर प्रदेश में डटे रहते तो उत्तर प्रदेश को अपने विचारों की नयी प्रयोगशाला बना कर अपने अंतिम वर्षों को एक नये ऐतिहासिक अवसर, एक नयी ऐतिहासिक चुनौती और एक नये वरदान में बदल सकते थे। उत्तर प्रदेश छोड़ कर यह अवसर उन्होंने खो दिया। उनके अंतिम वर्ष जिस पीड़ा, जिस घुटन और पार्टी नेतृत्व के हाथ का खिलौना बन जाने से पैदा हुई असहायता की भावना में बीते, उसने उनके अंतिम जीवनकाल को एक अभिशाप में बदल दिया। उनकी गम्भीर शारीरिक बीमारी किसी हद तक उनकी मानसिक स्थिति का ही दुष्परिणाम थी जब वो 'क्रिएटिव' न रह पाने के कारण 'डिफेंसिव' होते चले गये। थोड़ी राहत यदि उन्हें मिली तो इस कारण कि उन्होंने उत्तराखंड की राजनैतिक 'स्वायत्तता' के आंदोलन में अपने अंतिम वर्षों में एक सक्रिय और सकारात्मक भूमिका निभायी। इस स्थानिक आंदोलन में उनके राजनीतिक कद के व्यक्ति की भागीदारी ने 'स्वायत्तता' के लक्ष्य को एक प्रतिष्ठा और मान्यता प्रदान की अन्यथा उस समय राजनैतिक समझ के अनुसार 'स्वायत्तता' संकीर्ण प्रादेशिकता (नैरो पैरोकियलिज्म) का पर्याय बन गयी थी और राष्ट्रीय दृष्टि से विघटनकारी मानी जाती थी। अपनी जड़ों में वापसी और उसकी विकास प्रक्रिया में सकारात्मक भूमिका ने ही कामरेड जोशी को कटुता, घुटन और पीड़ा से भरे अंतिम वर्षों में थोड़ा संतोष, थोड़ी आत्मिक शांति और थोड़ी सार्थकता की भावना प्रदान की, जिसका मैं साक्षी था और प्रत्यक्षदर्शी भी।

प्रश्न उठता है कामरेड ज्योति बसु से सम्बंधित लेख में कामरेड जोशी पर यह लम्बी टिप्पणी का क्या अर्थ और क्या सार्थकता है? मेरी राय में कामरेड जोशी की जीवनयात्रा के अनुभव कामरेड बसु की जीवनयात्रा के सही मूल्यांकन में अत्यंत सहायक हैं। कामरेड जोशी अपने अंतिम वर्षों में इस बात को बार बार दोहराते थे कि काश उन्होंने सन् 1950 में पार्टी की सदस्यता वापस मिलने पर उत्तर प्रदेश को अपना कार्यक्षेत्र चुनने का जो सही निर्णय लिया था वे उस पर दृढ़ रहे होते। अगर ऐसा हुआ होता तो स्वयं उनके लिए, पार्टी के लिए और उत्तर प्रदेश तथा देश के लिए सन् 1950 से 1980 तक के उनके तीस वर्ष जनरल सेक्रेटरी के 15 वर्षों से अधिक सार्थक, सर्जनात्मक और सकारात्मक बन जाते। ये तीस वर्ष सचमुच एक सर्जनात्मक चुनौती के, रचनात्मक प्रयोगों के वर्ष बन जाते।

कामरेड जोशी की सोमनाथ लाहिरी से उनके दिल्ली चले आने के कुछ वर्षों के बाद की बातचीत मुझे आज भी याद है जब उन्होंने लाहिरी को कभी भी बंगाल छोड़ कर केन्द्रीय नेतृत्व में दिल्ली चले आने की भूल न करने की सलाह दी थी। उनका कहना था कि आने वाले युग में केन्द्रीय नेतृत्व में भी वही लोग सार्थक भूमिका निभा सकेंगे जिनकी प्रादेशिक स्तर पर जड़ें गहरी हों और जनसेवा द्वारा अर्जित प्रचुर अनुभव और मजबूत जनाधार हो।

जो त्रासदी अपने अंतिम वर्षों में कामरेड जोशी या गंगाधर अधिकारी जैसे नेताओं ने अनुभव की थी वैसी ही त्रासदी अंतिम वर्षों में सोशलिस्ट नेता जयप्रकाश नारायण और राम मनोहर लोहिया ने

भी अनुभव की थी। जयप्रकाश नारायण का अपने 'प्रिजन नोटबुक्स' में यह कहना कि 'मेरी जिन्दगी तो पूरी तरह अस्त व्यस्त और निरर्थक हो चुकी है' (माइ लाइफ इज इन शैम्बल्स) त्रासदी की स्थिति का साफ साफ स्वीकार है। मुझे याद है कि उभरती और विस्फोटक रूप धारण करती नक्सली समस्या के मूल में निहित भूमि समस्या की गम्भीरता को उजागर करते हुए जयप्रकाश के अत्यंत महत्वपूर्ण विश्लेषण आत्मक लेख 'फेस टु फेस' (आमने सामने) से अत्यंत प्रभावित होकर मैं गांधी शांति प्रतिष्ठान की एक गोष्ठी में जयप्रकाश नारायण से यह प्रश्न करने की धृष्टता कर बैठा था कि विश्व की या सम्पूर्ण भारत की चिन्ता करने के स्थान पर यदि उन्होंने कुछ वर्ष बिहार की भूमि और जाति समस्या से जुड़ते हुए बिहार के गांवों में बिताये होते— उसी तरह जैसे चीनी नेता माओ ने येनान में बिताये थे— तो बिहार के माध्यम से भारत पर भी उनका प्रभाव स्थायी और ऐतिहासिक महत्व का होता और उन्हें अपना जीवन भी कई गुना अधिक सार्थक महसूस होता। मेरा प्रश्न उनकी तीव्र उत्तेजना और प्रचंड क्रोध का कारण बना, आत्मपरीक्षण का नहीं। लेकिन गोष्ठी में बैठे कई प्रबुद्धजनों ने मेरे प्रश्न को एकदम सही माना था।

मुझे लगता है बंगाल को साठ वर्षों से अधिक समय तक अपने अन्य सहयोगियों के साथ अपनी मुख्य कर्मभूमि और रेडिकल कार्यक्रमों की प्रयोगशाला बनाने के अनुभव की समृद्धि ने ज्योति बसु के जीवन को सामाजिक सार्थकता और आत्म परितोष की भावना (सेन्स आफ फुलफिलमेण्ट) एक साथ प्रदान की जिसकी अभिव्यक्ति उनके संस्मरणों (मिमौयर्स) तथा उनके सुरभि बर्नार्जी द्वारा अधिकृत रूप से लिखे गये 'आत्मचरित' में पूरी तरह होती है। समाज के लिए सार्थकता और आत्म परितोष की भावना का यह मेल पी.सी. जोशी, जयप्रकाश और लोहिया जैसे राष्ट्रीय स्तर के नेताओं के 'आत्मकथ्य' से शायद नहीं व्यक्त होता है और इस कमी ने उनके अंतिम वर्षों को पीड़ादायी बना दिया। एक प्रश्न इन सबको अंदर ही अंदर कचोटता रहा कि क्या वे अपने आजादी के बाद के वर्ष अधिक सार्थक, सकारात्मक और अधिक कारगर सामाजिक प्रयोगों में नहीं बिता सकते थे जिन प्रयोगों में वे जनसाधारणों को भी पूरी तरह भागीदार बना सकते। स्थानिक जड़ों और धरातल से कटे कटे होने के कारण उनके प्रयोग और प्रयास वांछित दिशा में सार्थक और कारगर नहीं हो पाये। जो अवसर और लाभ ज्योति बसु को एक निरंतरता, एकाग्रता और लक्ष्य प्रतिबद्धता के साथ बंगाल को अपने विश्वासों, विचारों और विविध कार्यक्रमों की प्रयोगशाला बनाने का मिला वह अवसर और सौभाग्य बहुत कम लोगों को मिला या मिलता है। इस सुनहरे अवसर का ज्योति बसु ने कितना सार्थक उपयोग किया यह प्रश्न भी अलग से महत्वपूर्ण और प्रासंगिक है जिस पर गम्भीरता से विचार जरूरी है। बंगाल के प्रयोग किस हद तक दीर्घकालीन दृष्टि से बंगाल के लिए और भारत के लिए हितकारी और मार्गदर्शी बने यह प्रश्न भी अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रासंगिक है। जिस प्रकार उन्नीसवीं सदी और बीसवीं सदी के आरम्भ के दशकों के बंगाल का नवजागरण देशव्यापी नवजागरण का प्रेरणास्रोत बना उसी प्रकार क्या आजादी के बाद में ज्योति बसु और उनके साथियों के निर्देशन में किये गये प्रयोग देश भर के लिए नये प्रयोगों के प्रेरणास्रोत बने यह प्रश्न भी अत्यंत प्रासंगिक और विचारणीय है। यदि इनका प्रभाव देशव्यापी न होकर बंगाल तक सीमित होकर रह गया तो उसके क्या कारण थे? क्या ज्योति बसु और उनके साथी बंगाल के नवजागरण की सच्ची संतान, उसकी विरासत को बंगाल और देश के हित में आगे बढ़ाने वाले और विस्तार और गहराई देने वाले साबित हुए? यदि पूरी तरह नहीं तो इस अपूर्णता, अपर्याप्तता और अक्षमता के क्या कारण थे? ज्योति बसु की जीवनयात्रा का सही और सम्पूर्ण मूल्यांकन इन्हीं प्रश्नों के गहन विवेचन और परीक्षणों से जुड़ा है। क्या अपने 'आत्मकथ्य' में ज्योति बसु ये प्रश्न उठा सके हैं और इनकी निर्ममता से खोज करते हुए नजर आते हैं? इन मुद्दों पर विचार अनिवार्य है।

इन प्रश्नों पर मैं विस्तार से कभी बाद में विचार करूंगा। यहां केवल इन मुद्दों पर अपनी विचार प्रक्रिया का सूक्ष्म संकेत देना काफी होगा। बंगाल को सम्पूर्ण रूप से अपना कार्यक्षेत्र और वैकल्पिक राजनीति की प्रयोगशाला बना कर यदि ज्योति बसु और उनके साथियों ने क्षेत्र केन्द्रित प्रयोगों की सकारात्मक सम्भावनाओं और उपलब्धियों को उजागर किया तो साथ ही साथ राष्ट्रीय प्रक्रियाओं

से स्वायत्त या उदासीन और कटी हुई क्षेत्रीयता की सीमाओं को भी उजागर किया। जरूरत थी क्षेत्रीय सरोकारों और राष्ट्रीय (और अंतर्राष्ट्रीय) सरोकारों के बीच संतुलन और सुसंगति की। यही थी शायद राजनीति और अर्थनीति के बंगाल माडल की बुनियादी कमजोरी जो एक सीमा के बाद स्वयं बंगाल की उन्नति और उसके विकास में अवरोधक बन गयी। शायद अत्यंत संवेदी और तीव्र सहज बुद्धि के धनी ज्योति बसु को इसका अहसास हो गया था। इसीलिए जब उन्होंने अपने पार्टी नेतृत्व से विपक्ष की पार्टियों द्वारा उन्हें सर्वसम्मति से केन्द्र में प्रधानमंत्री बनाने का सुझाव स्वीकार करने को कहा तो इस सुझाव के पीछे उनकी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा नहीं बल्कि इस बात का अहसास था कि बंगाल केन्द्रित राजनीति की सम्भावनाएं एक माने में समाप्तप्राय हो चुकी हैं और उन्हें राष्ट्रीय प्रक्रियाओं से जोड़ने और इस प्रकार अनुप्राणित करने की जरूरत है। मेरे कहने का मतलब है पी.सी. जोशी, अजय घोष, जयप्रकाश और लोहिया की राष्ट्र केन्द्रित राजनीति और अर्थनीति, के प्रयोगों की अपनी सीमाएं थीं जिनका उनको अंतिम वर्षों में तीव्र अहसास होने लगा था और उसे क्षेत्रीय सरोकारों से जोड़ने का प्रश्न उन्होंने उठाया था। उसी प्रकार ज्योति बसु जैसे नेताओं को क्षेत्र केन्द्रित राजनीति की सीमाओं का अहसास अपने जीवन के अंतिम वर्षों में होने लगा। इसका प्रमाण है ज्योति बसु का यह कथन कि वह पार्टी नेतृत्व द्वारा उनके प्रधानमंत्री बनने का प्रस्ताव अस्वीकार करने को एक 'बहुत बड़ी भूल' मानते हैं। आज के संदर्भ में जरूरत है कि क्षेत्र और देश एक दूसरे के पूरक बनें। उनका एक दूसरे से अलगाव आज की समस्याओं का एक मूल कारण है।

2

फिलहाल मैं लौटता हूं उसी बिन्दु पर जो ज्योति बसु से मेरी भेंट को मेरे लिए महत्वपूर्ण बनाने वाले संदर्भ को उजागर करता है। यानी मैं कलकत्ता स्थित इंडियन स्टैटिस्टिकल इंस्टीट्यूट में जाने के निर्णय से पैदा हुई अपनी मानसिक दुविधाओं, संशयों और उलझनों का सूत्र फिर से पकड़ रहा हूं जो ज्योति बसु से मेरी मुलाकात को समझने के लिए अत्यंत प्रासंगिक है। यह प्रसंग मेरे लिए ही व्यक्तिगत रूप से महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि जितना मेरे लिए व्यक्तिगत महत्व का है उतना ही मेरी राय में सामूहिक महत्व का भी है।

मैं पहले जिक्र कर चुका हूं कि मेरे अग्रज कामरेड पी.सी. जोशी की राय में कलकत्ता जाने और इंडियन स्टैटिस्टिकल इंस्टीट्यूट के 'प्लानिंग डिवीजन' में नियुक्ति स्वीकार करने का मेरा निर्णय ऐसा ही था जैसे मैं अपने पूर्व निर्धारित सामाजिक लक्ष्य से ही हट रहा था और जैसे लक्ष्य की प्राप्ति के जाने पहचाने, परखे हुए रास्ते को ही छोड़ रहा था।

यही नहीं कामरेड जोशी ने मुझसे कहा कि मैं इस कटु सत्य का सामना करने का साहस जुटाऊं कि मैं कानपुर के मजदूरों के या अल्मोड़ा के किसानों के बीच होलटाइमर के रूप में काम करने का उनका प्रस्ताव ठुकरा कर जो रास्ता अपना रहा हूं वह जनसेवा की हार्ड लाइफ (कठिन जिन्दगी) के स्थान पर मध्यवर्गीय 'सॉफ्ट लाइफ' (आराम की जिन्दगी) चुनने का रास्ता है जिस रास्ते पर चल कर हमारे सामने ही अनेक युवा अपने सच्चे कर्तव्य पथ से भटकने लगे हैं और मैं उन्हीं का अनुगामी बन रहा हूं। प्रोफेसर महालनोबिस का इंस्टीट्यूट इस तरह के भगोड़े कम्युनिस्टों का आश्रम (रिफ्यूज) सा बन रहा है। किसी जमाने में कम्युनिस्ट पार्टी की अनुमति से युवा कामरेड वहां जाते थे और मजदूर मोर्चा, किसान मोर्चा की तरह इंस्टीट्यूट के मोर्चे पर कार्यकर्ताओं को पार्टी द्वारा भेजने की बात होती थी। अब न अनुशासन है, न प्रतिबद्धता। सब अपनी अपनी सुविधा, अपना अपना सीमित स्वार्थ खोज रहे हैं।

एक वरिष्ठ कम्युनिस्ट के ये शब्द किसी भी युवा के मनोबल, उसके निश्चय को हिला देने में सक्षम थे। फिर मुझे तो वे पार्टी परिवार का ही नहीं अपने परिवार का सदस्य स्वीकार कर चुके थे। प्रोफेसर महालनोबिस उनके अच्छे मित्र थे और कामरेड जोशी ने उन्हें एक पत्र लिख दिया था कि मेरे

इंस्टीट्यूट जाने से वे कदापि सहमत नहीं हैं लेकिन वे मुझे वहां जाने से रोक नहीं रहे हैं। वे यह चाहते हैं कि प्रोफेसर मुझे जोशी परिवार का सदस्य होने के नाते कोई भी ऐसी सुविधा या रियायत न दें जो अन्य को उपलब्ध नहीं है। वे चाहेंगे कि मुझ पर अन्य से अधिक सख्ती बरती जाय और मुझे शोध कार्य के कठिन अनुशासन में रखा जाये ताकि मैं कई अन्य साथियों की तरह 'साफ्ट लाइफ' (आरामतलबी) की जिन्दगी का आदी न बन जाऊं।

कामरेड जोशी का पत्र मुझे प्रोफेसर ने अपने कक्ष में बुला कर सुनाया और मेरी प्रतिक्रिया जाननी चाही। मेरे चुप रहने पर प्रोफेसर बोले कि तुम्हारे अग्रज ऐसा क्यों सोचते हैं कि एक अकादमिक की जिन्दगी 'साफ्ट लाइफ' है। उनकी राय में सबसे 'साफ्ट लाइफ' तो पार्टी मेम्बर या पार्टी एकटीविस्ट की है जो सोचने विचारने का तकलीफदेह कार्य पार्टी नेतृत्व को सौंप देता है और देश का पार्टी नेतृत्व सौंप देता है कम्युनिस्ट इंटरनेशनल या रूस या चीन या इंग्लिस्तान के कम्युनिस्ट नेताओं को। पार्टी कार्यकर्ता तो 'जाब डूअर' बन कर रह जाते हैं। स्वतंत्र चिन्तन तो कम्युनिस्ट संगठन और अनुशासन के अंदर आज लगता है जैसे सम्भव ही नहीं। ऐसे समय स्वतंत्र बुद्धिजीवी की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। बौद्धिक कर्म अगर सच्चे मन से किया जाये तो सबसे कठिन कर्म है। उन्होंने कहा वे आशा करते हैं कि यदि मैं अपने काम से बौद्धिक जीवन की कठिनता, कर्मठता और गरिमा का अहसास अपने अग्रज को दिला सकूँ तो उन्हें खुशी होगी और वे इस काम के लिए मुझे सभी प्रकार के प्रोत्साहन और सुविधाएं उपलब्ध करायेंगे। मैं कभी भी किसी समय बिना किसी औपचारिकता के उनसे सीधा सम्पर्क कर सकता हूँ और अपनी कठिनाइयों से उन्हें अवगत करा सकता हूँ। मैं यह न समझूँ कि मैं सिर्फ 'प्लानिंग डिवीजन' का अंग हूँ बल्कि मैं समझूँ कि मैं सारे इंस्टीट्यूट का अंग हूँ और किसी भी विभाग से सीधे सम्पर्क स्थापित कर सकता हूँ।

प्रोफेसर ने मेरा यह कह कर उत्साहवर्द्धन भी किया कि मैंने अपने अग्रज और पार्टी के सर्वोच्च नेता रहे व्यक्ति की असहमति के बावजूद बौद्धिक कर्म में प्रवेश करने का निर्णय लेकर जो नैतिक साहस, मनोबल और वैचारिक स्वतंत्रता का परिचय दिया है, मेरे भविष्य के लिए उनकी राय में शुभ संकेत है। मैंने उन्हें बताया कि राजनीति में बचपन से ही मेरी पीढ़ी के प्रेरणास्रोत यदि कामरेड जोशी रहे हैं तो बौद्धिक क्षेत्र में मेरे प्रेरणास्रोत प्रारम्भिक काल में मेरे स्थानीय स्कूल और कालेज के तेजस्वी और निष्ठावान अध्यापक और उच्च शिक्षा के दिनों में प्रोफेसर राधाकमल मुकर्जी और प्रोफेसर धूर्जिट प्रसाद मुखर्जी जिन्होंने मेरे मन में स्वतंत्र बौद्धिक कर्म के लिए आदर और निष्ठा के बीज बोये और अपनी 'वैचारिक स्वतंत्रता' से कभी न समझौता करने की शिक्षा और संस्कार दिये। इन दोनों से प्रोफेसर पूरी तरह परिचित थे और यह जान कर कि मैं इन दोनों का प्रिय शिष्य रहा हूँ मैं उनका विशेष स्नेहपात्र सहज ही बन गया।

प्रोफेसर महालनोबिस की स्वयं बंगाल नवजागरण में जड़ें गहरी थीं और विज्ञान और समाज विज्ञान के क्षेत्र में वे बंगाल नवजागरण की प्रेरणाओं को ही समाहित करने और आगे बढ़ने के लिए प्रतिबद्ध थे। उनके द्वारा संस्थापित इंडियन स्टेटिस्टिकल इंस्टीट्यूट इन्हीं बुनियादी मूल्यों और आदर्शों से प्रेरित विश्वस्तर का संस्थान बन गया था। प्रोफेसर के जिस कथन ने मुझे अत्यधिक प्रभावित किया था वह था कि विश्वस्तर पर दूसरे महायुद्ध के अंत के बाद और खासतौर पर शीतयुद्ध द्वारा पैदा हुए विरोधी खेमों में विश्व के विभाजन और फलस्वरूप राजनैतिक और बौद्धिक ध्रुवीकरण के परिणाम बौद्धिक क्षेत्र के लिए घातक और भयावह हुए हैं। इस विभाजन और ध्रुवीकरण ने स्वतंत्र बौद्धिक चिन्तन और शोध के मार्ग में भयंकर और दुर्जेय बाधाएं खड़ी कर दी हैं। पश्चिमी देशों में तो बुद्धिजीवी और विद्वान भी इस ध्रुवीकरण और विभाजन के शिकार हो गये हैं और उनके बीच खुला विचार विनिमय और संवाद ही जैसे समाप्त हो गया है। पश्चिम का यह परिदृश्य एशिया, अफ्रीका, लातिन अमरीका के नवस्वतंत्र देशों के बुद्धिजीवियों और विद्वानों के लिए अवरोधक बन गया है। एक ओर नवस्वतंत्र देशों को एकदम बदले हुए विश्व और अपने अपने देशों की परिस्थितियों में नयी राजनीति, नयी अर्थनीति, नयी समाज व्यवस्था के निर्माण के लिए एक नयी शोध प्रणाली, नये चिन्तन, नयी अवधारणाओं और विवेचन पर

आधारित गुणात्मक रूप से नये बौद्धिक आधार की जरूरत है। लेकिन दूसरी तरफ बुद्धिजीवियों को कम्युनिस्ट देशों में शीतयुद्धजन्य राजनैतिक धुवीकरण और वैचारिक मतांधता (डागमेटिज्म) ने प्रभावित ही नहीं, इतना आतंकित एवं अक्षम कर रखा है कि इस कारण तथाकथित पहली और दूसरी दुनिया में बौद्धिक कर्म अत्यंत कठिन और अवरोधग्रस्त हो गया है। इस स्थिति के फलस्वरूप आज विश्व एक गम्भीर बौद्धिक एवं अवधारणात्मक संकट के दौर से गुजर रहा है। ऐसी स्थिति में शीतयुद्ध की खेमेबंदी, बौद्धिक जड़ता और संवादहीनता से अपने को अलग रखे हुए भारत की विश्व भर के संवेदी और बौद्धिक खुलेपन के इच्छुक बुद्धिजीवियों में बड़ी प्रतिष्ठा है। धुवीकरण और संवादहीनता की लौह यवनिका तोड़ कर संवाद तथा सहयोग आरम्भ करने और बनाये रखने के इच्छुक बुद्धिजीवियों में भारत की बड़ी साख है। बौद्धिक संवाद और सहयोग के प्रेरक और प्रोत्साहक के रूप में कलकत्ता के इंडियन स्टैटिस्टिकल इंस्टीट्यूट का सम्मान विश्वभर में यानी पहली, दूसरी और तीसरी दुनिया भर में है। यह इंस्टीट्यूट ही ऐसा केन्द्र है जिसमें तीनों दुनियाओं के प्रतिनिधि बुद्धिजीवी आमंत्रित हैं और मानसिक पूर्वाग्रहों और सीमाओं से ऊपर उठ कर संवाद और सहयोग के लिए एकत्र होते हैं और होते रहे हैं।

प्रोफेसर महालनोबिस के इस कथन की सत्यता और प्रामाणिकता का सबूत मुझे सन् 1956 के इंस्टीट्यूट के रजत जयंती समारोह के मौके पर मिला जब अमरीका, इंग्लिस्तान, फ्रांस, पोलेण्ड, हंगेरी, सोवियत संघ, चीन, जापान, लातिन अमरीका, अफ्रीका तथा एशिया के अन्य देशों के विश्वविख्यात और अग्रणी बुद्धिजीवी और विद्वान प्रोफेसर महालनोबिस तथा उनके द्वारा संस्थापित इंस्टीट्यूट और उसके विद्वानों के अभिनंदन के लिए तथा अनेक मसलों पर अनुशासन विशेषज्ञों की गोष्ठियों के लिए जमा हुए थे। वह आजाद भारत के लिए, बंगाल के लिए, चिरस्मरणीय क्षण थे जब कलकत्ता में स्थित इंस्टीट्यूट विश्वविख्यात बुद्धिजीवियों के सबसे महत् विश्व सम्मेलन का केन्द्र बन गया था। मेरा यह परम सौभाग्य था कि मैं इस सुनहरे मौके का साक्षी और प्रत्यक्षदर्शी था। विश्व के उन सभी नामी गणितज्ञों, संख्याशास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों, वैज्ञानिकों, जनांकिकी विशेषज्ञों, भूगोलवेत्ताओं, प्राकृतिक वैज्ञानिकों और जीवविज्ञानियों आदि आदि को एक साथ एक ही समय एक ही मंच पर देखने का ऐसा अवसर मुझे मिला जो जीवन में फिर कभी नहीं मिला। वह नये नये आजाद हुए भारत का चिरस्मरणीय क्षण था जिस पर कोई भी भारतीय गर्व कर सकता था और औपनिवेशिक मानसिकता से पैदा हुई आत्मसम्मानहीनता की भावना से सचमुच मुक्त महसूस कर सकता था। यह समय तब आया जब मैं इंस्टीट्यूट में मानसिक संशय, अंतर्द्वंद्व और दुविधा का पूरा एक वर्ष बिता चुका था। वह एक क्षण मेरे मानसिक क्षितिज से संशय और भ्रांति के बादलों को हटाने, नवालोच से मेरे मानसिक क्षितिज को तमस मुक्त करने और मेरे अंदर नयी ऊर्जा उत्पन्न करने में पूरी तरह सक्षम बना।

यह बाद की बात है। जब मेरी प्रोफेसर महालनोबिस से मई सन् 1953 में प्रथम मुलाकात हुई और मैं इंस्टीट्यूट से जुड़ गया तब मैं स्वयं को दो परस्पर विरोधी वैचारिक दबावों और खिंचावों के द्वंद्व में फंसा हुआ महसूस कर रहा था— एक ओर मेरे अग्रज और अन्य वरिष्ठ साथियों का 'पॉलिटिकल एक्टीविज्म' से सम्बंध तोड़ने का दबाव और दूसरी ओर मेरे गुरु प्रोफेसर राधाकमल मुकर्जी और धूर्जटि प्रसाद मुकर्जी— दो मुकर्जियों— का बौद्धिक कर्म से जुड़ने का संयुक्त दबाव और प्रभाव। इन परस्पर विरोधी दबावों से मेरा सम्पूर्ण व्यक्तित्व, मेरा समग्र मानसिक जगत ही जैसे दो हिस्सों में विभाजित हो गया था। कभी एक दबाव, एक प्रभाव मेरे ऊपर हावी हो जाता और कभी दूसरा प्रभाव और दबाव हावी हो जाता। सचमुच वह दौर मेरे जीवन का सबसे कठिन दौर था। लेकिन एक सर्जनात्मक अनुभव भी। मैं ऐसी मानसिक स्थिति में था कि मुझे श्री हरकुमार चतुर्वेदी ने जो कलकत्ता निवास के दौरान मेरे बड़े भाई से बन गये थे, मुझे सूचना दी कि कामरेड ज्योति बसु बड़ानगर, जो उनका चुनाव क्षेत्र था, आयेंगे और वहां लोगों से मिल मिला कर इंस्टीट्यूट भी आयेंगे। मेरी कामरेड बसु से पहले इंस्टीट्यूट के साथियों के साथ मुलाकात हुई और बाद में हरकुमार जी के कमरे में अलग से जहां कामरेड बसु, हरकुमार जी और मैं उपस्थित थे।

पहले सबके साथ हुई मुलाकात का जिक्र करना जरूरी है जिसमें इंस्टीट्यूट से सम्बंधित दो मुख्य मुद्दों पर इंस्टीट्यूट के कम्युनिस्ट बुद्धिजीवियों के ग्रुप ने ज्योति बसु से सलाह मशविरा किया था। पहली समस्या इंस्टीट्यूट के मैनेजमेण्ट और स्टाफ के बीच स्टाफ की मांगों को लेकर बार बार उभरते तनाव और खींचातानी से सम्बंधित थी, जो कभी कर्मचारियों द्वारा विरोध सभाओं, धरना, जूलूस तथा कभी कभी हड़ताल का रूप भी ले लेती थी। इंस्टीट्यूट में शिक्षा, शोध, आंकड़ों के संग्रह और विश्लेषण से जुड़े लोग टेक्नीशियन कहलाते थे। और शेष सहायक या सपोर्टिंग स्टाफ जिसमें बड़ी उदारता से भरती की गयी थी। एक टेक्नीशियन को तरह तरह की सेवाएं प्रदान करने के लिए तीन या चार कर्मचारी यानी नान टेक्नीकल स्टाफ सहायक रूप में था। हालत यह थी इंस्टीट्यूट को बाहर से देखने पर उसकी शकल एक कारखाने से अधिक मिलती जुलती थी, शैक्षिक और शोध संस्थान से कम। एक बहुत बड़ी कैण्टीन थी जहां चाय, नाश्ता, भोजन सभी उपलब्ध था। एक बड़ा अतिथिगृह था जहां अतिथि विद्वानों का अस्थायी/स्थायी निवास था। इंस्टीट्यूट का अपना इस्टेट डिपार्टमेण्ट था जिसमें इंजीनियर, सुपरवाइजर, बर्दई आदि सभी थे। कोई निर्धारित कानून या नियम नहीं थे, सब कुछ प्रोफेसर महालनोबिस के अपने निर्णय, डिसक्रीशन आदि पर निर्भर रहता था। ऐसी स्थिति में जहां न सरकारी कानून लागू थे, न इंस्टीट्यूट की अपनी नियमावली तो तनाव, असंतोष, एक दूसरे से प्रतिद्वंद्विता आदि की बड़ी गुंजायश थी और आयेदिन हंगामा बना रहता था। अगर इसने विस्फोटक रूप नहीं लिया था तो यह प्रोफेसर महालनोबिस की असंदिग्ध और अविवाद्य प्रतिष्ठा और विश्वसनीयता के कारण ही था। सबको उनका निर्णय मान्य था और उनको एक विशाल परिवार के पालककर्ता के रूप में सभी मानते थे। इसका अंदाजा इस बात से भी लगाया जा सकता है कि समस्त इंस्टीट्यूट में जहां कई प्रोफेसर नियुक्त हुए थे, 'प्रोफेसर' शब्द केवल महालनोबिस जी के लिए प्रयोग होता था। वे प्रोफेसर महालनोबिस नहीं, प्रोफेसर कहलाते थे। लोगों को यह कह कर चुप किया जा सकता था कि 'प्रोफेसर' यही चाहते हैं, यह उनका निर्णय है। यह प्रोफेसर का ही कमाल था कि जब सारे देश में कामरेड रणदिवे के नेहरू सरकार विरोधी कार्यक्रम की प्रतिक्रिया में सरकारी और सरकारी मदद से चलने वाले गैरसरकारी संस्थानों में कम्युनिस्टों और कम्युनिस्टों के हमदर्दों की भर्ती बंद हो गयी थी तब केवल इंस्टीट्यूट में ही ऊंचे से लेकर नीचे तक सभी स्तरों पर बड़ी तादाद में कम्युनिस्टों की नियुक्ति हुई थी। कम्युनिस्ट प्रोफेसर के इस रुख के लिए उनके कृतज्ञ तो थे लेकिन कई बार प्रोफेसर के मातहत अफसरों के कर्मचारी विरोधी रुख पर भड़क उठते थे। तब या तो प्रोफेसर का हस्तक्षेप या इंस्टीट्यूट के अंदर के हरकुमार चतुर्वेदी जैसे पुराने, प्रतिष्ठित टेक्नीशियन या इंस्टीट्यूट के बाहर उस इलाके के एम.एल.ए. ज्योति बसु जैसे प्रतिष्ठित कम्युनिस्ट नेता के हस्तक्षेप से मसले सुलझाये जाते थे और कर्मचारियों के लिए कुछ रियायतें प्राप्त की जाती थीं।

ज्योति बसु से इंस्टीट्यूट के कम्युनिस्ट टेक्नीशियन ग्रुप की जिस मुलाकात का मैं जिक्र कर रहा हूँ उसमें स्टाफ और मैनेजमेण्ट के बीच कर्मचारियों के मसलों से पैदा हुए मतभेद और असंतोष के संदर्भ में ज्योति बसु से टेक्नीशियन ग्रुप मशविरा कर रहा था। मुझे याद है ज्योति बसु ने स्पष्ट शब्दों में कहा था इन सभी मसलों का हल बातचीत और सद्भाव से खोजना चाहिए और कोई भी ऐसा कदम नहीं उठाना चाहिए जिससे इंस्टीट्यूट की और प्रोफेसर की गरिमा को ठेस पहुंचे। इंस्टीट्यूट की एक विश्वस्तर के शैक्षिक और शोध संस्थान के रूप में प्रतिष्ठा और राष्ट्रीय विकास और योजना निर्माण के क्षेत्र में उसकी महत् भूमिका को देखते हुए यहां के कर्मचारियों और टेक्नीशियनों के संगठन की आक्रामकता इंस्टीट्यूट और उसमें काम करने वाले लोगों के लिए अहितकारी होगी।

यहां यह भी बताना जरूरी है कि जब केन्द्रीय सरकार ने इंस्टीट्यूट की राष्ट्रीय योजना निर्माण में भूमिका स्वीकार कर उसे वित्तीय सहायना देना स्वीकार किया था तो वित्त मंत्रालय ने यह शर्त लगायी थी कि इंस्टीट्यूट को वित्त मंत्रालय द्वारा इस अनुदान के आडिट के लिए राजी होना पड़ेगा। इस शर्त को प्रोफेसर ने एकदम नामंजूर किया था और कहा था कि एक वैज्ञानिक संस्थान कभी भी सरकार द्वारा आडिट के लिए राजी नहीं हो सकता क्योंकि यह विज्ञान की स्वायत्तता के सिद्धांत के एकदम प्रतिकूल

है। ऐसी स्थिति में प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने पार्लियामेंट द्वारा इंस्टीट्यूट को 'इंस्टीट्यूशन ऑफ नेशनल इम्पोर्टेंस' के रूप में मान्यता देकर सरकारी आडिट से उसकी छूट के प्रावधान को भी पार्लियामेंट की स्वीकृति दिलवायी थी। कामरेड बसु इससे अवगत थे। उन्होंने इंस्टीट्यूट के लोगों को चेतावनी दी कि यदि अंदरूनी मसले सद्भाव से हल नहीं हुए तो केन्द्रीय सरकार के जो तत्व इंस्टीट्यूट की वित्तीय स्वायत्तता के विरोधी थे उन्हीं को इससे बल मिलेगा और जो सुविधाएं और सहूलियतें इंस्टीट्यूट के कर्मचारियों ने हासिल की हैं वे भी खतरे में पड़ जायेंगी।

तब मुझे ज्योति बसु अन्य कम्युनिस्टों से भिन्न शिष्ट और मृदुभाषी ही नहीं सभी पहलुओं पर नजर रख कर राय बनाने वाले और दूरदृष्टि के धनी भी लगे थे। एक और बात ने मुझे प्रभावित किया था। ज्योति बसु ने इस बात पर जोर दिया कि शिक्षा और शोध कार्य में लगे टेक्नीशियन कहे जाने वाले कम्युनिस्ट साथियों को स्वयं को आम कर्मचारियों से ऊंचा और बड़ा समझ कर उनसे अपने को अलग नहीं कर लेना चाहिए। बल्कि उनके साथ कम्यूनिकेशन बनाये रखना चाहिए और अपने ज्ञान का लाभ उन तक पहुंचाने के लिए सदा कोशिश करनी चाहिए। इस दृष्टि से उन्होंने हरकुमार चतुर्वेदी की प्रशंसा की जिन्हें आम कर्मचारी भी 'इंस्टीट्यूट का गांधी' कह कर सम्बोधित करते थे और सदा उनकी राय लेते थे। कम्युनिस्टों को किसी प्रकार की ऊंची हैसियत की भावना (स्टेटस कान्सशनेस या एरोगेन्स) से मुक्त होना चाहिए और नीचे स्तर के मेहनत करने वालों से भी बराबरी से पेश आना चाहिए, यह बात कामरेड बसु कहना चाहते थे जो उन्होंने उपदेश देने की शैली में नहीं बल्कि बड़े सहज ढंग से, सांकेतिक रूप से, हरकुमार जी की मिसाल देकर कही।

इसके बाद ज्योति बसु ने प्लानिंग डिविजन के टेक्नीशियन साथियों से यह जानना चाहा कि प्लानिंग सम्बंधी किस प्रकार के शोध और अध्ययन इस समय अर्थशास्त्री और समाजशास्त्री इस नये विभाग में कर रहे हैं? कौन से नये विचार, नये परिप्रेक्ष्य, नये प्रोजेक्ट प्लानिंग के लक्ष्य और उसकी अवधारणा को ठोस रूप देने के लिए इस समय प्रस्तावित हैं? मैं चौंका जब ज्योति बसु ने 'प्लानिंग' के पर्याय के रूप बंगाली में 'योजना' शब्द नहीं जो हम हिन्दी में प्रयोग करते हैं बल्कि 'परिकल्पना' शब्द का प्रयोग किया जो मुझे बताया गया बंगाली में योजना या प्लानिंग का पर्याय है। मैंने मजाक में कहा शायद इसीलिए 'प्लानिंग' वास्तविक न होकर 'कल्पनिक' हो गयी है। शायद देबू बोस ने भी जो हमारे सहकर्मी थे, मजाक में कहा कि अब समझ में आया कि यू.पी. वाला क्यों यथास्थितिवादी (स्टेटस कोइस्ट) होता है स्वप्नदर्शी (विजनेरी) नहीं।

ज्योति बसु के प्रश्न के उत्तर में अशोक रुद्रा ने बताया कि एक मुख्य प्रोजेक्ट इस समय 'परस्पेक्टिव प्लानिंग' का है जिसमें अगले चार पांच दशकों में जनगणना की वृद्धि तथा अन्य बदलते बुनियादी आर्थिक और सामाजिक पैरामिटर्स में परिवर्तनों के आधार पर भोजन, स्वास्थ्य, रोजगार, मकान, आदि आदि जरूरतों में वृद्धि के 'प्लान प्रोजेक्शंस' का खाका तैयार होगा। इसी प्रकार अन्य 'प्रोजेक्ट्स' जिन पर विचार निमित्त आपस में हो रहा था उसकी जानकारी ज्योति बसु को दी गयी। इस सबको सुन कर ज्योति बसु की जो प्रतिक्रिया हुई वह कुछ कुछ मुझे याद आती है। आज करीब पचास साल के अंतराल के बाद उनकी वैचारिक प्रतिक्रिया को याद कर मुझे लगता है कि उनकी प्रतिक्रिया कितनी समझदारी की थी और कितनी दूरदृष्टि भरी और भविष्य का संकेत देने वाली (प्रोफेटिक) थी। उन्होंने एक अत्यंत सीधा सादा लगने वाला प्रश्न पूछते हुए कहा कि वे एक प्रदेश के स्तर पर सोचने वाले और कार्य करने वाले कार्यकर्ता के रूप में जानना चाहते हैं कि क्या राष्ट्रीय स्तर की योजना (बंगाली में परिकल्पना) सौ फीसदी उसी तरह प्रदेश के स्तर पर भी प्रासंगिक होगी, लागू होगी, या प्रदेश-प्रदेश की विशिष्टताओं के आधार पर प्रदेश स्तर की योजना का अलग से निर्धारण करना होगा? यह एक ऐसा प्रश्न था जिस पर, उस युग में जब योजना के माने ही राष्ट्रीय योजना थे और राष्ट्र ही योजना निर्धारण की मुख्य और बुनियादी इकाई, योजना की अवधारणा को परिभाषित करने वाले और उसे निर्धारित करने वाले लोगों का बहुत कम ध्यान गया था। मुझे याद आता है कि आजादी प्राप्ति के पूर्व

जब कांग्रेस के अध्यक्ष सुभाष चंद्र बोस थे तब उन्होंने जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में एक नेशनल प्लानिंग कमेटी बनायी थी और नेहरू जी ने इस कमेटी की अनेक विषयों जैसे जनसंख्या, भूमिसुधार, कम्यूनिकेशन, रोजगार आदि को लेकर उप कमेटियां बनायी थीं। लेकिन उसमें 'रीजनल प्लानिंग' को लेकर कोई कमेटी या पेनल नहीं बना था। तीसरी पंचवर्षीय योजना की रिपोर्ट में अवश्य एक अध्याय 'रीजनल डेवेलपमेंट ऑफ प्लानिंग' जोड़ा गया था।

ज्योति बसु ने तब पचास वर्ष पूर्व हम सबसे कहा था कि इंस्टीट्यूट चूंकि बंगाल में स्थित है उसे राष्ट्रीय स्तर की योजना के निर्माण के साथ साथ बंगाल के लिए प्रासंगिक योजना के निर्माण में भी पहल करनी चाहिए जो अन्य राज्यों के लिए प्रासंगिक योजना के निर्माण में भी सहायक होगी। सहज बुद्धि और अनुभव के संयोग से ज्योति बसु का यह सुझाव और प्रस्ताव दीर्घकालीन दृष्टि से कितना महत्वपूर्ण था यह तब उतना स्पष्ट नहीं था जितना बाद में हुआ और आज तो यह लगता है कि दूरदृष्टि का धनी व्यक्ति ही इतना पहले इतनी महत्वपूर्ण बात कह सकता था। सन् 1982 में जब इंदिरा गांधी के निर्देशन पर केन्द्रीय सरकार ने 'सॉफ्ट वेअर कमेटी फॉर कम्यूनिकेशन' का गठन किया था, उसमें कई प्रतिभाशाली और अनुभवी व्यक्तियों को शामिल किया था और मुझे उसका अध्यक्ष बनाया था, उस समय जिन मुख्यमंत्रियों से हमारी कमेटी मिली उसमें ज्योति बसु प्रमुख थे। उस समय 'कम्यूनिकेशन या संचार व्यवस्था के विकेन्द्रीकरण 1 के नये भारतीय माडल' का जो तर्कसंगत और सुविवेचित प्रस्ताव ज्योति बसु ने हमारी कमेटी के सामने 'दूरदर्शन के अतिकेन्द्रित संचार माडल' के विकल्प के रूप में रखा था वह एक माने में सन् 1955-1956 के बीच इंस्टीट्यूट के 'प्लानिंग डिवीजन' के कम्युनिस्ट टेक्नीशियनों के सामने उनके द्वारा बीज रूप में प्रस्तुत की गयी प्रदेश या क्षेत्र की विशिष्टता और विविधता के प्रति संवेदी राष्ट्रीय आर्थिक योजना की वैकल्पिक अवधारणा का ही एक प्रकार से संचार के क्षेत्र में विस्तार था, ऐसा आज मुझे लगता है।

3

अब मैं ज्योति बसु के साथ अपनी उस व्यक्तिगत मीटिंग का जिक्र करूंगा जो हरकुमार चतुर्वेदी के इंस्टीट्यूट के कमरे में उन्हीं की उपस्थिति में हुई थी। हरकुमार जी ने ज्योति बसु को जैसे ही मेरा परिचय दिया तो उन्होंने तुरंत उत्तर दिया कि वे काका बाबू से मेरे बारे में जान चुके थे और स्वयं मुझसे मिलने का मौका खोज रहे थे। संयोग से आज मुलाकात सम्भव हो गयी जिसकी उन्हें खुशी है। हरकुमार जी ने बताया कि मैं कलकत्ता आ तो गया, इंस्टीट्यूट में मेरी नियुक्ति भी हो गयी है लेकिन मन से मैं अभी उत्तर प्रदेश में ही हूँ और वहां से विस्थापित होने और वहां एक पार्टी एकटीविस्ट और एक बुद्धिजीवी के रूप में अपनी जिम्मेदारी न निभा पाने की अपनी विवशता, दुविधा और व्यथा से अभी भी मुक्त नहीं हो पाया हूँ। ज्योति बसु ने हंसते हुए कहा कि काका बाबू भी पहले यही सोच रहे थे कि 'यंगर जोशी' को यू.पी. में ही जमे रहने का कोई तरीका निकालना चाहिए था जैसा 'सीनियर जोशी' भी चाहते थे। लेकिन जब काका बाबू और ज्योति बसु ने पूरी स्थिति पर विचार किया तो उन्हें 'यंगर जोशी' से सहानुभूति हुई और उन्होंने महसूस किया कि परिस्थितियों के दबाव से वे यहां आने के लिए विवश हुए हैं। वे फिर बोले कि गम्भीरता से विचार करने पर काका बाबू और ज्योति बसु ने महसूस किया कि यह विवशता एक सुनहरा अवसर भी बन सकती है कलकत्ता की पार्टी और 'यंगर जोशी' दोनों के लिए। ज्योति बसु ने मुझे समझाया कि परिस्थितियों के दबाव से लाखों लोग, जिनमें मेरी तरह पढ़े लिखे लोगों से कहीं ज्यादा संख्या में आम लोग यू.पी. बिहार के गांवों और शहरों से बंगाल में, विशेष रूप से कलकत्ता में रोजी रोटी के अवसर खोजने पर मजबूर हुए हैं। इसका नतीजा है कि एक छोटा मोटा उत्तर प्रदेश, एक छोटा मोटा बिहार बंगाल में, कलकत्ते में, बस गया है। नतीजा यह है बड़े पैमाने पर पड़ोसी राज्यों से आर्थिक और सामाजिक विस्थापन के फलस्वरूप पारम्परिक बंगाल का चरित्र ही बदल गया है। अब बंगाल केवल बंगाल में पैदा हुए, बंगाली भाषी लोगों का ही प्रदेश नहीं उन सब अन्य भाषा

भाषियों का भी प्रदेश है जो अपना प्रदेश छोड़ कर बंगाल में, कलकत्ता में बस गये हैं। आज जरूरी हो गया है कि पार्टी इस महत् परिवर्तन को समझे और इसके अनुकूल अपनी समझ, अपनी राजनीति, अर्थनीति, आंदोलन और संगठन की रणनीति को बदले और इस वृहत विस्थापित मेहनतकश समुदाय की मुसीबतों, समस्याओं तथा आकांक्षाओं से अपने को जोड़ कर उनकी भी सच्ची प्रतिनिधि बने। यह एक बड़ी चुनौती है, बड़ा अभियान है जिसके लिए एकभाषी के स्थान पर बहुभाषी बनना होगा और उनकी भाषा में यानी हिन्दी में तथा उनकी बोलियों में उनसे संवाद और सम्पर्क (मास कॉन्टेक्ट) करना होगा। इसी काम में हरकुमार, 'यंगर जोशी' जैसे साथियों की भागीदारी की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका है। उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि हरकुमार और जोशी बंगाली बुद्धिजीवियों को हिन्दी सिखाने की पहल यदि करें तो बंगाली बुद्धिजीवी हिन्दी प्रदेश के लोगों से संवाद उनकी भाषा में कर सकता है। इसी के फलस्वरूप इंस्टीट्यूट में मैंने हिन्दी सिखाने का कार्य बड़ी खुशी से स्वीकार किया। ज्योति बसु बोले कि यू.पी., बिहार से कलकत्ता आये लोगों से सम्पर्क करने और उनको संगठित करने के कई महत्वपूर्ण पहलू हैं। एक तो है यू.पी. और बिहार से विस्थापित और बंगाल में प्रवेश किये लोगों का सर्वेक्षण जिससे यह पता चले कि उनकी संख्या और उनका आर्थिक और सामाजिक वर्गीकरण और संघटन (क्लासिफिकेशन और कम्पोजिशन) क्या है, विस्थापन के बाद उनकी आर्थिक और सामाजिक जीवन स्थिति क्या है, उनके क्या वर्तमान पेशे हैं जिनसे वे रोटी रोजी कमाते हैं? उनकी आवास आदि की स्थिति क्या है? वे किन परिस्थितियों में रहते हैं, उनकी अपने घर भेजी हुई रकम कितनी है, वे परिवार से बिछड़े हैं या बीबी, बच्चों के साथ रहते हैं? उनकी सांस्कृतिक जिन्दगी क्या है? उनके बंगाली जनसाधारण के साथ कैसे रिश्ते बने हैं? उनकी राजनैतिक भूमिका क्या है? क्या वे जनसंगठनों, जनआंदोलनों का हिस्सा हैं? राजनीति से उदासीन और निष्क्रिय हैं? उनके नागरिक अधिकार क्या हैं? क्या नगर पालिका उनके प्रति अपने दायित्व के लिए सचेत है? उन्हें बंगाली नागरिक समाज का हिस्सा मानती है या वे उनकी चेतना और जिम्मेदारी के दायरे से बाहर हैं? इस तरह के कई अन्य सवाल हैं जिनका उत्तर खोजने और जानकारी हासिल करने में यू.पी. तथा बिहार के प्रबुद्ध बुद्धिजीवी अहम भूमिका निभा सकते हैं। ज्योति बसु के कथन ने जैसे हरकुमार जी और मेरे सामने एक नयी दुनिया के दरवाजे खोल दिये, जैसे हमारे बंद दिमागों की खिड़कियां खोल दीं। उन्होंने बंगाली समाज की जो नयी परिभाषा हमारे सामने प्रस्तुत की वह एक नयी अवधारणा ही नहीं, नवअवधारणा के आधार पर एक नये सामाजिक और राजनैतिक एजेण्डा, एक नये आर्थिक कार्यक्रम, एक नये जनचेतना अभियान, जनसंगठन और जनआंदोलन की सम्भावनाएं और अवसर भी प्रस्तुत करती थी। ऐसा लगा जैसे इस नयी दृष्टि के आलोक में स्वयं मेरे विस्थापन से पैदा हुए संशय और अवसाद के बादल छंटने लगे हों और एक नयी ऊर्जा के प्रेरकस्रोत खुल रहे हों। मुझे लगा जैसे अपने गृहप्रदेश उत्तर प्रदेश से कलकत्ता आकर भी वहां से अलग नहीं, वहां के लोगों से जुड़ा हुआ हूं और जो काम करने के दरवाजे वहां बंद हो गये थे वे यहां कलकत्ते में, बंगाल में खुल गये हैं। कामरेड बसु का सुझाव कि मैं हरकुमार जी के साथ पास में ही काशीपुर के कारखानों के पूर्वी उत्तर प्रदेश के हिन्दी भाषी मजदूरों और बड़ाबाजार क्षेत्र के हिन्दुस्तानी बोलने वाले मुसलमान बीड़ी मजदूरों में पार्टी और मजदूर संगठनों द्वारा आरम्भ किये मजदूर शिक्षा कार्यक्रम के कार्यान्वयन में सहायक होकर उत्तर प्रदेश से विस्थापित लोगों से जुड़ने की शुरुआत कर सकता हूं।

इस जनशिक्षा कार्यक्रम में मैंने कलकत्ता निवास के पूरे काल तक भाग लिया। इस भागीदारी ने कलकत्ता प्रवास को मेरे लिए एक महत् सकारात्मक अनुभव और सर्जनात्मक उपलब्धि का स्रोत बना दिया जिसके लिए मैं कामरेड ज्योति बसु का ऋणी हूं।

ज्योति बसु से बड़ानगर कलकत्ता में मेरी पहली मुलाकात के बाद आधी सदी से अधिक का समय गुजर गया। उसके बाद कुछ वर्ष पूर्व तक मैं बीच बीच में लगातार कलकत्ता जाता रहा हूं। इस दौरान बंगाल की ओर, विशेषकर कलकत्ते की ओर आजीविका की तलाश में अन्य प्रदेश से आ आ कर वहां बस जाने वाले सभी स्तर के खासकर मेहनत मजूरी करने वाले लोगों का निरंतर प्रवाह बढ़ा

ही है घटा नहीं है। इस संदर्भ में सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि मूल निवासी और आप्रवासी जनों के बीच दरार (ग्रेट डिवाइड) का प्रश्न भारत के कई अन्य प्रदेशों में तीव्र अंतर्विरोध, असंतोष और अशांति का कारण बना है और आज भी मौके बमौके उभर कर सामाजिक विस्फोट पैदा करता है, उस तरह के सामाजिक तनाव, टकराव और विस्फोट से पश्चिम बंगाल, विशेषकर कलकत्ता, जहां आप्रवासी जनसाधारण खिंचे चले जाते हैं और उसकी आबादी का महत्वपूर्ण हिस्सा बन जाते हैं, मुक्त रहा है। जहां गुजरात, महाराष्ट्र, आसाम, पंजाब और अन्य इलाकों में मूल निवासी और आप्रवासी का प्रश्न बार बार भड़क उठा है और आप्रवासी तथाकथित 'मूलनिवासियों' द्वारा स्वीकार न किये जाने की भावना से पीड़ित रहे हैं, बंगाल और कलकत्ता इसके अपवाद हैं लेकिन वे यदि इस नियम के अपवाद हैं तो ऐसा क्यों है? बंगाल और कलकत्ता के इस 'इक्सेप्शनलिज्म' के क्या कारण हैं? समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और राजनीतिशास्त्र तथा इतिहास के विद्वानों द्वारा इस प्रश्न पर गहन शोध और अन्वेषण, विवेचन और चिन्तन तो दूर, इस प्रश्न को पिछले दशकों से चले आ रहे एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न के रूप में भी वैधता नहीं मिली है।

गहन शोध और विवेचन से इस प्रश्न पर जो भी रोशनी पड़ेगी, लेकिन सहज बुद्धि से एक बात मैंने कलकत्ते में अपने 'फील्ड वर्क' और 'फील्ड अनुभव' के आधार पर महसूस की। मेरे निरीक्षण [1], अनुभव चिन्तन का सबसे महत्वपूर्ण अंतरिम निष्कर्ष यह है कि बंगाल और कलकत्ता के जनसाधारण की मानसिकता, सामाजिक दृष्टि और राजनीति उस कट्टरपन, संकीर्णता, अनुदारता और असहिष्णुता, साम्प्रदायिकता, जातिगत एवं प्रादेशिक अलगाव तथा द्वेष की भावना से मुक्त है जो अन्य प्रदेशों में उग्र रूप अखिलचार कर चुकी है। इस संदर्भ में पिछले दशकों में, जो बंगाल में वामपंथी रुझान और संगठनों के राजनीतिक वर्चस्व के दशक हैं, वामपंथी सरकार और संगठनों की इस मूल निवासी और आप्रवासी के सम्बंधों के मसले पर अत्यंत सकारात्मक भूमिका रही है जिसे उनके विरोधी भी स्वीकार करने को विवश होंगे। निश्चय ही इसके पीछे बंगाल में वामपंथी रुझान और वामपंथी राजनीति के सर्वोच्च और सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि के रूप में और प्रदेश स्तर पर वामपंथी सरकार के मुख्य प्रेरक, संचालक और मार्गदर्शक के रूप में ज्योति बसु की निर्णायक भूमिका है। बंगाल और कलकत्ता के स्तर पर 'मूल निवासी' और 'आप्रवासी' के सम्बंधों के प्रश्न को तनाव और टकराव का कारण न बनने देने का श्रेय ज्योति बसु की उदार और विवेकपूर्ण नेतृत्व क्षमता को देना उचित ही होगा। ज्योति बसु से जब पचास वर्ष पूर्व मेरी प्रथम मुलाकात हुई थी तब वे एक उभरते हुए, होनहार और सहज बुद्धि और दृष्टि की उदारता के धनी नजर आये थे। यहां तक कि विरोधी दल के नेता होते हुए भी वे बंगाल के तत्कालीन मुख्यमंत्री और राष्ट्रीय स्तर की नेतृत्व क्षमता से सम्पन्न डा. विधान चंद्र राय के अनन्य स्नेह भाजन रहे। विधान बाबू की पार्टी के ही लोगों ने जब उनसे कहा था कि वे जितना महत्व ज्योति बसु को देते हैं उतना अपनी पार्टी के नेताओं और कार्यकर्ताओं को नहीं। विधान बाबू का उत्तर था : मेरी पार्टी वाले केवल सिफारिशें लेकर आते हैं जनसाधारण की समस्याएं लेकर नहीं जैसा ज्योति बाबू करते हैं। अगर मेरी पार्टी वाले आम लोगों की मांगें भी लाते हैं तो केवल बंगाली भद्र समाज या उन समुदायों की समस्याओं को लाते हैं जो अपने को 'असली बंगाली' समझते हैं। ज्योति बसु एकमात्र नेता हैं जो उन सभी विभिन्न समुदायों और विशेषकर मेहनत मजूरी करने वालों की समस्याएं भी असेम्बली में हमेशा उठाते रहे हैं या मेरे पास लाते रहे हैं जो बाहर से यहां आकर बस गये हैं और यहीं के हो गये हैं। ज्योति बसु भारत की, बंगाल की महत् और उदार दृष्टि परम्पराओं के सच्चे प्रतिनिधि हैं जिनके हाथों में बंगाल का भविष्य सुरक्षित है, इस तथ्य को विधान बाबू ने व्यक्तिगत बातचीत में नहीं, सार्वजनिक रूप से भी घोषित किया था। यह आजादी के प्रारम्भिक वर्षों की बात है। विधान बाबू की सोच ज्योति बसु के बारे में कितनी सही थी, ज्योति बसु का सम्पूर्ण कार्यकाल इसका प्रमाण है।

इस लेख की तैयारी के दौरान ज्योति बसु के कार्यकाल में कुछ वर्षों के लिए बंगाल के राज्यपाल रहे श्री बी.डी. पांडे से जब मैंने टेलीफोन के माध्यम से प्रश्न किया कि ज्योति बसु की किस विशेषता ने उन्हें सबसे अधिक प्रभावित किया, उन्होंने बिना किसी हिचक के स्पष्ट उत्तर दिया : "मुझे

सबसे अधिक प्रभावित किया उनकी उदार दृष्टि (ब्रौड माइण्डेडनेस) ने और सबके साथ उनके असाधारण । रूप से शिष्ट और सुसंस्कृत व्यवहार ने। वे सच्चे अर्थ में भद्रलोक हैं। उन्होंने जोर देकर कहा कि ज्योति बसु बंगाल की समस्याओं से जुझते हुए संकीर्ण दृष्टि और किसी प्रकार के 'बंगाली शौचिनिज्म' से ऊपर उठे हुए दिखायी दिये। उन्होंने अपने व्यवहार से साबित किया कि वे उन सबको बंगाल का अभिन्न अंग मानते हैं जो चाहे बंगाल में बाहर से आये हों और बंगाल में बस गये हैं, जिनका भविष्य बंगाल से जुड़ गया है।" पांडे जी ने फिर कहा : "बंगाल में रहने और काम करने का इसी माने में मेरा बड़ा सुखद अनुभव है।"

अंत में इस लेख को समाप्त करने के पूर्व प्रसिद्ध अंग्रेजी पत्रिका 'सेमिनार' के मार्च 2006 के अंक का जिक्र करना चाहता हूँ जो 'सोल सिटी कलकत्ता' पर केन्द्रित है। इसे पढ़ने के बाद मुझे लगा कि बंगाली के भद्र बुद्धिजीवी में क्या उतनी ही दृष्टि व उदारता है जितनी कि बंगाल के जनसाधारण । में थी जो उनके सर्वोच्च नेता ज्योति बसु के विचार और व्यवहार में दिखायी दी। मुझे लगा सेमिनार के इस अंक का सबसे बड़ा अंतर्विरोध है इस अंक के प्रारम्भिक बीजलेख की स्थापनाओं और इसमें शामिल लेखों के विवेचनों में। बीजलेख के आरम्भ में ही बताया गया है कि बाहर के प्रदेशों से आये हुए लोगों द्वारा कलकत्ता को अपने शहर के रूप में अपना लेने तथा बंगाली भाषा सीख कर वहाँ के रहने वालों से सार्थक संवाद बनाये रखने की व्यग्रता यदि आप्रवासियों का चारित्रिक गुण बन कर उभरी है तो 'आप्रवासिया' को पूरे मन से बंगाल का अभिन्न अंग स्वीकार करने की उदारता कलकत्ता के मूल और पुराने वासियों की चारित्रिक विशिष्टता बन कर भी प्रखर रूप से उजागर हुई है। यह सार्थक और सफल दोतरफा संवाद और सद्भाव सचमुच में कलकत्ता की अपनी चारित्रिक विशेषता है। आश्चर्य की बात यह है कि इस अंक में जितने लेख हैं उनके लेखक हैं नामी भद्रलोक बंगाली बुद्धिजीवी लेकिन जिनकी बंगाली की परिभाषा 'इक्सक्लूसिव' है 'इन्क्लूसिव' नहीं। वे जैसे उन लोगों के अस्तित्व से ही अनजान हैं जो बाहर से आकर बंगाल में रह रहे हैं और यहाँ बस कर यहाँ के ही हो गये।

मैं फिर दोहराना चाहता हूँ कि जो उदारता और खुली दृष्टि आम लोगों में पायी जाती है वह भद्रलोक बुद्धिजीवी में नहीं है चाहे वह दक्खिनपंथी स्वप्न दास गुप्ता हों या वामपंथी अशोक मित्रा। दोनों कलकत्ते की चारित्रिक गहराई और विस्तार से शायद पूरी तरह परिचित नहीं। प्रश्न उठता है कि उदार और व्यापक दृष्टि वाले ज्योति बसु और उनके साथी क्या एक लोप हो रही पीढ़ी और परम्परा के प्रतिनिधि हैं या एक ऐसी स्थायी विरासत के प्रेरक और प्रसारक जो उनके बाद भी जीवंत रहेगी। भविष्य ही इसका सही सही उत्तर देगा।